Year-9-10; 2018-19
ISSN–2231-1130

Impact Factor – 3.521(IIJIF)
●●●●VEETHIKA●●●

राहुल सांकृत्यायनः हिन्दी साहित्य में साम्यवाद का द्वार

डा0 अजय सिंह यादव*

वाम शब्द की उत्पत्ति फ्रांस की क्रान्ति के साथ हुई। यह पिछली दो शताब्दियों के दौरान साहित्यिक अभिव्यक्ति में 'सामाजिक सवाल' अर्थात् समाज के दबे–कुचले, शोषित–वंचित लोगों खासतौर पर मजदूर वर्ग की जरूरतों और माँगों से जुड़े सवालों को स्वर देने वाले शब्द के रूप में उभरा। कार्ल मार्क्स और एंगेल्स का जिस तरह आयरलैण्ड की आजादी, इण्टरनेशनल लीग और पेरिस कम्यून जैसी घटनाओं से अटूट नाता जुड़ा हुआ था, उसी तरह राहुल सांकृत्यायन की जीवन–यात्रा से साम्यवादी समय का गहरा लगाव है। पेरिस कम्यून की योजना और संघर्ष पर मार्क्स को लन्दन में सबसे अधिक गाली खानी पड़ी थी। राहुल को इस देश में सोवियत संघ का प्रचारक होने के नाम पर भरपूर गालियाँ और धमकी सहनी पड़ी। बावजूद इसके भारतीय साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारों, शोषित–वंचित मजदूरों तथा श्रम की महत्ता को स्थापित करने का महत्वूपर्ण कार्य राहुल जी ने ही किया था, राहुल सांकृत्यायन ने न केवल सैद्धान्तिक तौर पर साहित्य सृजन के द्वारा बल्कि व्यावहारिक तरीके से किसानों–मजदूरों के आन्दोलनों का नेतृत्व करते हुए , उनके हक में लड़ते हुए भी साम्यवादी संघर्ष और साहित्य के लिये मार्ग प्रशस्त किया था। 1936 ई0 के आस–पास जो नया यथार्थवाद आया जिसने साहित्य को प्रगतिशील भी बनाया और आधुनिक भी, उसके उभार का बहुत बड़ा कारण ये किसान–मजदूर आन्दोलन भी थे। इस सम्बन्ध में नामवर सिंह भी लिखते हैं कि –''लेकिन स्वतंत्र रूप से 1934 के आस–पास सहजानन्द सरस्वती, राहुल सांकृत्यायन आदि लोगों ने किसानों को संगठित किया और समझा गया कि दरअसल किसान शक्ति के साथ मजदूर वर्ग मिलेगा तो इन दोनों की एकता से ही सच्ची और सही आजादी हासिल होगी। भारतीय राजनीति ने यह एक नया मोड़ लिया था।''

राहुल जी का विरल व्यक्तित्व साम्यवादी है। उन्होंने दुनिया का चक्कर लगाते हुये आदमी की बनावट को गहराई से टटोला था। उनका पूरा विश्वास था कि मनुष्यता की रक्षा तथा शोषित–वंचित वर्ग की मुक्ति साम्यवाद से ही संभव है। अपनी पुस्तक' दिमागी गुलामी' में वे साफ लिखते हैं कि –'' खेतिहर–मजदूरों को खयाल करना चाहिये कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ही ले जाकर रहेगी। उसके सिवा भले दिनों को दिखलाने वाला कोई दूसरा रास्ता नहीं है।'' राहुल जी ने भारतीय समाज की जातीय व्यवस्था, छुआ–छूत, धर्म तथा संस्कृति का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने समाज में अछूत समझी जाने वाली जातियों के लिये एक अलग संगठन की वकालत की थी, क्योंकि उनकी समस्याएं अधिक विकट थी तथा सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक सभी क्षेत्रों में फैली हुई थीं। राहुल जी का मत था कि किसानों–मजदूरों को सिर्फ खेतों और प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी पाकर ही संतुष्ट नहीं होना चाहिए बल्कि उद्योग धन्धों, कारखानों, मिलों को भी स्थापित करना चाहिए और उसमें भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना चाहिए । वे स्पष्ट रूप से सचेत करते हुए लिखते हैं –''सिर्फ खेती से ही तो सारा काम नहीं चल सकेगा, हमें देश में कारखानों और मिलों का प्रसार करना पड़ेगा और तब कहीं हमारी आर्थिक दरिद्रता दूर होगी, क्रान्ति को आगे बढ़ने दो, बस यही खेतिहर–मजदूरों का ध्येय होना चाहिए।'' उनका यह कथन राहुल जी की उदार चेतना और दूर–दृष्टि का बोध कराता है जो साम्यवादी विचारों को मजबूती से थामे, उसके विकास तथा किसानों–मजदूरों के अधिकारों को दृष्टिगत् रखते हुये भारतीय हितों के अनुरूप देश के विकास की नयी अवधारणा प्रस्तुत करता है।

राहुल जी मजदूरों–किसानों के हक में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध लड़ते हुए कई बार जेल भी गये थे। उनकी रचनाओं में न केवल अंग्रेजी सत्ता के प्रति विद्रोह का भाव है बल्कि भारतीय पूँजीपतियों, जमीदारों के प्रति आशंका भी है। 'जीने के लिए' उपन्यास जो बिहार की छपरा जेल में रहते हुए लिखा गया था, में एक बेहतर जिन्दगी का जिसमें परतंत्रता, शोषण और दरिद्रता का कोई स्थान न हो, का उल्लेख है। राहुल जी ने इसमें पूँजीपतियों को समाज के शत्रु के रूप में ही प्रस्तुत किया है। उपन्यास का नायक देवराज पूँजीपतियों के विरुद्ध अपना आक्रोश इन शब्दों में बयाँ करता है – ''अपनी सारी शक्ति लगाकर हम गरीबों का खून चूसकर मोटे होने वाले इन लोगों को सामने से हटाना है। हमें दिखला देना है कि न हम अंग्रेज सरकार को चाहते हैं, न उसके पिट्ठुओं – इन धनियों और जमींदारों को।'' इसी तरह 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' उपन्यास में पूँजीवादी मानसिकता के प्रतिरोध का स्वर उपन्यास के पात्र राजबली के इस कथन में अभिव्यक्ति होता है –''जोंको के राज में मक्खन जैसे मुलायम हाथ की तारीफ की जाती है, सोवियत में गड्ढा पड़े–पड़े कड़े हाथों की तारीफ होती है। जोंकों के मुल्क में कामचोर–देहचोर की

*असिसटेन्ट प्रोफेसर हिन्दी राजकीय महाविद्यालय देवगनपुरा, पनवाड़ी, महोबा (उ0प्र0)।

इज्जत की जाती है, सोवियत में मेहनती मजदूर, किसान, काम करने वाले लोगों की इज्जत होती है।''

राहुल जी धर्म और संस्कृति को अलग दृष्टिकोण से देखते हैं तथा धर्म को एक स्वस्थ धर्मनिरपेक्ष राज्य के लिए खतरा मानते हैं। आजादी के आन्दोलन के समय जब लोग यह मानने लगे थे कि धार्मिक उन्माद का खतरा नहीं है और धर्म, देश के लिए समस्या नहीं बनेगा, तब भी राहुल जी भारतीय समाज की तहों में जड़ जमाये, धर्म के अंकुरित होते बीजों तथा आने वाली समस्याओं के प्रति आशंकित थे। उनकी पुस्तक 'साम्यवाद ही क्यों' में उनकी इस आशंका को स्पष्ट रेखांकित किया जा सकता है– ''कहा जा सकता है, अब धर्म और ईश्वर उतनी खतरनाक चीज नहीं रह गये हैं, किन्तु बात क्या वैसी है। क्या धर्म के विष वाले दाँत तोड़ दिये गये हैं। कम से कम भारत तो इस समय भी इसके मारे परेशान है। बराबर धर्मान्ध लोग खून–खराबा करते ही जा रहे हैं।'' राहुल जी ईश्वर की सत्ता पर भी बराबर चोट करते रहे। उन्होंने ईश्वर को निर्बलों के नहीं बल्कि शोषकों–पूँजीपतियों के पक्ष में खड़े होने की बात कही। राहुल जी मानते हैं कि –''ईश्वर पूँजीपतियों के काम का रहा है। यदि भारत की दृष्टि से देखा जाये तो जब तक धर्म है, उसे शांति और स्वतंत्रता का स्वप्न छोड़ देना चाहिए। सामंतवादिता भी धर्मान्धता को बढ़ावा देती है।'' राहुल सांकृत्यायन अंत तक अनात्मवादी, अनीश्वरवादी, भौतिकवादी और साम्यवादी बने रहे। धर्म के प्रति उनके विरोध को लक्ष्य करते हुए परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं कि –''वे धर्म, संस्कृति को एक नहीं मानते थे। उनके सांस्कृतिक अवबोध में सेकुलर दृष्टि सहज ही लक्ष्य की जा सकती है।'' राहुल जी ने सनातन धर्म और व्यवस्था का सदैव विरोध किया था और सनातन धर्म की व्यवस्थाओं को पनपने और पल्लवित होने के लिए ब्राह्मणों को उत्तरदायी ठहराया था। राहुल जी की मान्यता है कि चाटुकार ब्राह्मणों के कारण ही राजतंत्र अथवा राजाओं का शासन कायम रहता है। ऐसे भी ब्राह्मण हैं जो यह बतलाते हैं कि राजा स्वयं भगवान का प्रतीक होता है। इसे वर्तमान भाषा में 'डिवाइन राइट' सिद्धान्त के रूप में जानते हैं, जो सामन्तवादिता की प्रवृत्ति का पोषण करती है। राहुल जी को सामंती रहन–सहन और जीवनशैली से घोर वितृष्णा है। अपने उपन्यास 'राजस्थानी रनिवास' में राहुल जी लिखते हैं– ''वस्तुतः सामंती जीवन आमतौर से गन्दे कीड़ों का जीवन था। मानवता को दबाकर वहाँ पशुता प्रधानता प्राप्त किए हुए थी। मनुष्य को पशुता की तरफ जाने से रोकने के लिए जितनी मात्रा में संस्कृति की आवश्यकता है, यदि वह उतनी न मिले, तो वेशभूषा, बाहरी तड़क–भड़क आदमी को मनुष्य नहीं रहने देती।'' राहुल जी ने कई धर्म–वैदिक और आर्यसमाजी को वक्त के साथ पुराना पड़ जाने पर बदल दिया था। बुद्ध के बाद मार्क्स ही उनके व्यक्तित्व की समुचित शक्ति रहे। बौद्ध धर्म और संस्कृति से उनका लगाव भी गहरा रहा, फिर भी मार्क्स, लेनिन, स्टालिन और माओ से सीखने का उनमें अद्भुत गुण था। इस गुण से वह भारत को बदलने का भागीरथ प्रयास करते रहे। दुर्भाग्य से उनके विस्मयकारी बुद्धि वैभव से हिन्दी जगत का सघन परिचय नहीं हो पाया। अगर वे सिर्फ पण्डित होते तो उनके बारे में बातें करना हिन्दी जगत और शक्तिशाली राजनताओं के लिये आसान होता, पर उनका पण्डित होने के साथ प्रखर भारतीय वामपंथी होना उन्हें एक मुश्किल बौद्धिक बना देता है। भारतीयों को उनके पण्डित होने से नहीं बल्कि एक प्रखर बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक, व्यावहारिक साम्यवदी चिंतक होने से समस्या है, क्योंकि वे बड़ी निर्भीकता और प्रखरता से भारतीय सनातनी और वैदिक ज्ञान की आलोचना करते हैं। 1937 ई0 में इलाहाबाद की एक जनसभा जिसमें पं0 जवाहर लाल नेहरू भी उपस्थित थे, में उन्होंने स्पष्ट कहा था– ''ज्यादातर पुरानी पोथियों में 75 प्रतिशत तो बेवकूफियाँ ही बेवकूफियाँ भरी पड़ी हैं। हाँ कहीं–कहीं अकल की बातें भी हैं।'' राहुल जी के ऐसे वक्तव्यों से लोग तिलमिला जाते थे और उनपर व्यंग्य भी करते थे। एक सनातनी विद्वान ने तो यहाँ तक कह दिया था कि 'राहुल जी तैरते ही रहे, पार नहीं पाया है।' राहुल जी ने इसका जवाब देते हुए कहा था– ''जो लोग कुओं में तैरते हैं, वे मेढकों की तरह इस पार से उस पर भी चले जाते हैं। मगर जो सागर में तैरते हैं, वे तैरते ही रहते हैं, वे आर–पार नहीं जाते हैं।''

राहुल सांकृत्यायन जी ने स्थितियों की विकटता में भी अपने सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया। सिर्फ सनातनी पण्डितों–विद्वानों से ही उनका विरोध नहीं रहा, वरन् उनका प्रखर वैज्ञानिक वामपंथी चिंतक होना, भारतीय वामपंथी पार्टी को भी परेशान करता रहा, जिसके कारण उन्हें पार्टी से निकाल दिया गया था। यह भी एक विडम्बना ही है कि आजादी की लड़ाई के दिनों में जब भारत की सारी जनता एक साथ मिलकर लड़ रहीं थी तो मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों में वर्गभेद की चेतना जरूरत से ज्यादा प्रबल थी और अब जब आजादी मिलने के बाद समाज में वर्गभेद स्पष्ट होकर उभरने लगा तो बुद्धिजीवियों की वह वर्ग चेतना धीरे–धीरे कुंठित होने लगी। वर्गभेद बढ़ने के साथ वर्गबोध का ह्रास होने लगा था। विचारप्रणाली के रूप में मार्क्सवादी चिंतन को केन्द्रीय स्थान प्राप्त हुआ, लेकिन मार्क्सवाद में आस्था क्षीण होने लगी थी। इसका मुख्य कारण छद्म वामपंथी बुद्धिजीवियों की सत्ता से निकटता थी– ''आजाद भारत में वे वामपंथी बुद्धिजीवी ज्यादा सुविधा से काम कर सके

जो नेहरू और कांग्रेस के नजदीक रहे।'' राहुल जी यह नहीं कर सके, इसीलिए वामपंथी दल उन्हें स्वीकार नहीं कर पाया था। आज भी जीवन्त वैभव से समन्वित व्यावसायिक कसौटी पर खरे मार्क्सवादी भी कम नजर आते हैं। या तो डरे हुए बन्द–दिमाग के पार्टी लाइन के कम्यूनिस्ट हैं जो मौका पाते ही पार्टी को छोड़कर सरकार में अपनी महत्वाकांक्षाओं का सौदा पटा रहे हैं अथवा दल में जमे रहने के नाते कानूनी मार्क्सवाद की आड़ लेकर अपनी आराम–पसन्दगी को ढकतें हैं। राहुल जी ने इन्हीं अवसरवादी कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों को रूस के योरादानिया जैसा कहा था– ''योरादानिया जैसे आदमियों की देश में भी कमी नहीं है। हमारे देश में भी ऐसे चेहरे दिखायी पड़ते हैं जो समाजवाद के नाम की रट इसलिए लगाया करते हैं कि देश में समाजवाद न आने पाये, जिसमें पूँजीवादी जोंके अपने काम निर्द्वन्द्वतापूर्वक करती रहें। यदि कुछ पूँजीपति इन योरादानियों को हाथों पर उठाये फिरें, उनके पत्र उनकी तारीफ करते न थकें, तो आश्चर्य की क्या बात है। पंजाबी कहावत के अनुसार वह जानते हैं कि यह 'साडा बन्दा' है।''

आज जब सर्वग्रासी संकट से ग्रस्त हमारा समाज गहरी निराशा, गतिरोध और जड़ता के अँधेरे गर्त में पड़ा हुआ है, जहाँ पुरातनपंथी मूल्यों–मान्यताओं और रूढ़ियों के कीड़े बिलबिला रहे हैं तो राहुल का प्रखर रूढ़िभंजक, साहसिक और प्रयोगधर्मा व्यक्तित्व प्रेरणा का स्रोत बनकर सामने आता है। आज सांकृत्यायन जी की वैज्ञानिक जीवनदृष्टि, लोकोन्मुख तर्कपरकता तथा सकर्मक इतिहास–बोध तथा सिद्धान्त और व्यवहार की एकान्विति दृष्टि से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। राहुल जी जैसे इतिहास पुरूष, चिंतक का व्यक्तित्व जनमानस को पुनर्जागरण और प्रबोधन के लिये सर्वाधिक आंदोलित करने वाला है। राहुल जी के इसी प्रखर क्रांतिदर्शी व्यक्तित्व को लक्ष्य करके विष्णुचन्द्र शर्मा लिखते हैं –''अपने देश में संघर्ष करके राहुल सांकृत्यायन भी बड़े हुए हैं। सत्तर वर्षों के इतिहास को उन्होंने प्रभावित भी किया और बनाया भी है। किसानों में वह आज भी कथा–कहानियों के नायक जैसे हैं। नेहरू के समानान्तर एक वामपक्ष का नेतृत्व जनता में उभर रहा था जिसे उस समय राहुल जी ने 'नए भारत के नए नेता' कहा था। राहुल आज उसी नए भारत के जननायक और चिंतक हैं।''

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1- साखी पत्रिका, अंक–25, अप्रैल–जून 2015, पृष्ठ–319
2- दिमागी गुलामी, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ–58
3- वही, पृष्ठ–59
4- हिन्दी के चर्चित उपन्यसकार, डा0 भगवतीशरण मिश्र पृष्ठ–81
5- वही, पृष्ठ–82
6- नया ज्ञानोदय, दिसम्बर–2013, पृष्ठ–52
7- वही, पृष्ठ–52
8- वही, पृष्ठ–52
9- हिन्दी के चर्चित उपन्यसकार, डा0 भगवतीशरण मिश्र पृष्ठ–84
10- नया ज्ञानोदय, सितम्बर–2017, पृष्ठ–115
11- वही, पृष्ठ–116
12- वही, पृष्ठ–115
13- वही, पृष्ठ–100
14- वही, पृष्ठ–101